शुद्धि-पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२	मणुस्सगारे	मणुस्सगासे
१३	१४	तवस्स	नवस्स
१८	२	देवाणु प्रिय	देवाणुप्रिय
१८	१३	यूनता	न्यूनता
२०	६	अभिगजीयवाजीने	अभिगयजीवाजीवे
२१	१८	विहरइ। धण्णा	विहरइ। धण्णा ण ने राइसगतलवर जैण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुण्ड भवि पव्वयंति। धण्णा
२७	१४	पढमस्म	पढमस्स
२८	१३	वीस	उन्नीस
२८	१०	२२	२१
२९	६	तितियस्म	तितियस्स
३०	१८	आदान	प्रदान
३९	४	माणुस्साउण	मणुस्साउण

नोट-१ 'मुनि को आहार दान दिया जिसके प्रभाव से मनुष्यायु का बन्ध हुआ'-ऐसा सभी अध्ययनों के अन्त में लिखा है, इसके स्थान पर इस ही अध्ययनों में ऐसा समझना चाहिये- 'मुनि को आहार दान दिया जिससे संसार परित किया। तत्पश्चात् कालान्तर में मनुष्यायु का बन्ध किया।

२- प्रथम, द्वितीय और तृतीय तथा दसवें अध्ययन में वर्णित सुबाहुकुमार, भद्रनन्दीकुमार और सुजातकुमार तथा वरदत्तकुमार ये चार तो अब मोक्ष प्राप्त करेंगे। शेष छह अध्ययनों में वर्णित कुमारों ने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया।

३- पृष्ठ २८ में देवलोकों की उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन किया है। किन्तु मूलपाठ में उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति का वर्णन नहीं है। केवल देवलोकों का नाम है।

४- यह अनुवाद सर्वसाधारण के लिए है। इसकी भाषा सरल होनी चाहिए थी, परन्तु ऐसा नहीं होसका। आगे सरलता की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा।

सुखविपाक सूत्र

सम्पादक—

पं० मु० श्री अभयकुमारजी म०

*

द्रव्य सहायक—

एक धर्म बहिन

—०⁂०—

प्रकाशक—

श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन

संस्कृति रक्षक संघ

सैलाना (मध्य-प्रदेश)

प्रासंगिक निवेदन—

विपाक सूत्र के दो विभाग हैं। पहले विभाग का नाम दुःखविपाक है। उसके दस अध्ययनों में दुष्कृत्यों का दुःख दायक फल वर्णन है। दूसरे विभाग का नाम सुखविपाक है। इसमें सुपात्र दान के पुण्यानुबंधी पुण्य रूप फल का वर्णन है। जिसका विपाक- परिणाम सुखरूप हो, पौद्गलिक रूप से सुख रूप होने के साथ ही आत्मिक शाश्वत सुख के अभिमुख करने वाला हो, सादि अनन्त आनन्द की ओर बढ़ानेवाला हो, जिसका प्रारम्भ और अंत सुख रूप हो, उसे सुखविपाक कहते हैं।

सुखविपाक सूत्र में, सुबाहुकुमारादि भव्यात्माओं का चरित्र, गणधर भगवान द्वारा गुम्फित किया गया है। इनका सुपात्रदान उच्चकोटि का होते हुए भी, साधना जघन्य कोटि की होना लगती है। इन्होंने पुण्य का सञ्चय तो प्रचुरता से किया, किन्तु निर्जरा उतनी उत्कृष्टकोटि की नहीं हो सकी-कि जिससे वे अन्तकृत अणगारों की तरह उसी भव में सिद्ध हो जायँ, अथवा एकाभवतारी हो जाय। यह सूत्र स्पष्ट बतारहा है कि उन्होंने मुनिदान के भव से लगाकर मुक्ति लाभ पर्यन्त मनुष्य और देव के कुल १६ भव किये, जब कि भगवती सूत्र, जघन्य आराधना वाले को भी अधिक से अधिक १५ भव से अधिक नहीं बतलाता (भगवती८-१०)

उपरोक्त विचारणा से यह लगता है कि श्री सुबाहुकुमारजी बीच में कभी थोड़ी देर के लिए भी पडवाइ अवश्य हुए हैं। क्योंकि जो अपडवाइ होते हैं, वे १५ से अधिक भव करते ही

नहीं। दूसरा-सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागरोपम से कुछ अधिक है, किंतु श्री सुबाहुकुमारजी के देवभवों की जघन्य स्थिति भी ६० सागरोपम से अधिक होती है। ऐसी दशा में यही मानना पड़ेगा कि ये बाद में कभी कुछ गिरनेवाले हों अन्तर्मुहूर्त के लिए मिथ्यात्व का स्पर्श करेंगे। और यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में ऐसा होता भी है। हां, यह तो स्पष्ट है कि उनकी साधना उत्तरोत्तर बलवती होती जायगी, क्योंकि ये क्रमशः ऊँचे देवलोकों में जाने वाले होंगे।

सुखविपाक सूत्र गुणों में क्रमशः वृद्धि करने वाले चरित्रों से भरपूर है। इस मांगलिक सूत्र मानकर अनेक भव्यात्मा इसका नित्य स्वाध्याय करते हैं। प्रतिवर्ष चातुर्मास का प्रारम्भ होने पर, चातुर्मास करने वाले अनेक मुनिराज व महासती जी, पहले सुख विपाक सूत्र सुनाते हैं, उसके बाद दूसरा सूत्र सुनाते हैं ऐसी परम्परा चलगई है। यह इसके प्रति जनता की शुभरुचि का प्रमाण है।

इसके साथ "आधार वायनी नामक एक पद्यमय रचनी भी जोड़ी गई है। इसकी रचना १८० पर पूर्ण हुई थी। कविता की दृष्टि से नहीं, किंतु भावों की दृष्टि से यह अतिव उपयोगी है। अर्थात् व गभ में सुन होती हुई, इस आधार वायनी का स्वाध्याय रहे और प्रत्येक श्रावक श्राविका इसका पठन करें, इतना ही नहीं, वे गुणधरा का निदेश्न करके उनकी आरेय की निंदा दूर करने में प्रयत्नशील रहें-यही उद्देश्य इसे सुखविपाक सूत्र के साथ जोड़ने का है।

इसमें जो आधारवायनी प्राप्त हुई, उसमें अनेक अशुद्धियें [illegible] इसमें कुछ संशोधन भी किया है।

श्री श्यामदासजी की सज्झाय

साथ दी जारही है। यह भी स्वाध्यायी महानुभावों की भावना को प्रशस्त करने वाली है।

इसकी एक हजार प्रति के प्रकाशन का व्यय तिवरनगामलई (मारवाड़ में बारसी) निवासी स्वर्गीय श्रीमान् सेठ चालचंदजी साहब मुथा ने प्रदान किया था। परिस्थितिवश यह उनकी मौजूदगी में प्रकाशित नहीं हो सका, अब उनके स्वर्गवास के बाद प्रकाशित हो रहा है। जब हमने इसके मुद्रण की विज्ञप्ति सम्यग्दर्शन में प्रकाशित की, तो उससे प्रेरित हो, इन धर्म प्रेमी महानुभावों ने भी अपनी ओर से ५००, ५०० प्रतियों का व्यय देने की आज्ञा प्रदान की।

१ श्रीमान् सेठ चुन्नीलालजी, रतनचन्दजी हरमानचंदजी धोका गढ़सिवाना
२ श्री लक्ष्मीन्दु जैनदर्शनभण्डार अजमेर
३ श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी मालू खीचन
४ ,, जेठमलजी मांगीलालजी रनवाल मैसूर
५ ,, प्रतापमलजी केवलचन्दजी सा मौड़ ,,
६ ,, एक धर्म बन्धु ,,
७ ,, जयंतीलाल भाई कस्तूरचंदजी मदरकिया, जेठालाल भाई रायशी शाह तथा भाई जशवन्तलाल शांतिलाल शाह, बम्बई
८ ,, एक धर्म बहिन

यह संघ उपरोक्त महानुभावों का आभारी है और आशा करता है कि वे तथा अन्य बन्धु भी सम्यग्ज्ञान के प्रचार में हमेशा सहयोग प्रदान करते रहें। स्थ० प्रवर्तक पं० मु श्री हगामीलालजी म के सुशिष्य प मुनिश्री अभयकुमार जी म ने सघहितार्थ इसका अनुवाद करने की कृपा की है।

संघ, सम्यगज्ञान का प्रचार करने का यथाशक्य प्रयत्न कर रहा है। संघ का उद्देश्य है-जैन समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़े। इसी दृष्टि से अबतक, सूयगडाग, उत्तराध्ययन दशवैकालिक, अंतगड़, आदि का प्रकाशन किया और थोड़े मूल्य में प्रचार किया। इसके बाद नन्दी सूत्र का प्रकाशन होगा, और उसके बाद मोक्षमार्ग, नामक परमोपयोगी ग्रंथ का कार्य प्रारम्भ होगा।

संघ के धर्मप्राण सहायकों का विचार, व्यवस्थित रूप से भगवद्वाणी का प्रकाशन करने का भी है और उसका सम्पादन श्री भगवती सूत्र के अनुवाद के रूप में प्रारम्भ भी हो चुका है।

प्रिय धर्मी, दृढधर्मी महानुभावों के सहयोग और शुभाशीष से संघ, इस पुनीत कार्य में समर्थ हो और निर्ग्रंथ प्रवचन की कुछ सेवा कर सके, तो हम अपना अहोभाग्य समझेंगे।

यदि आप धर्म प्रिय हैं

तो

अ० भा० साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें। यह संस्था जैन धर्म के वास्तविक स्वरूप का प्रचार करती है। आगमिक एवं तात्त्विक ज्ञान का प्रचार कर धर्म संस्कारों का सिंचन करती है और यथाशक्ति विकार को रोकने का प्रयत्न भी करती है। इसके द्वारा जिनवाणी का सस्ते मूल्य में प्रचार होता है।

यदि आप अबतक इसके सदस्य नहीं बने हों तो शीघ्र ही बनजाइये। जिसकी विचार शुद्धि है-सच्ची श्रद्धा है, वह भी इसका सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिए कुछ

संघ के उद्देश और संक्षिप्त नियम

सघ के उद्देश—जन संस्कृति का प्रसार करना, आगमोक्त ज्ञान का प्रचार करना, सिद्धान्तानुकूल साहित्य का प्रकाशन करना। सुश्रद्धा सम्पन्न श्रावकों का संगठन करना। विकृति हटाना धर्मबन्धुओं के नैतिक और धार्मिक जीवन का उत्थान कर श्रेष्ठ श्रावक बनाना और पूज्य मुनिवर्ग के संयम पालन में सहायक होना उनमें आये हुए विकारों को हटाना।

मदस्य की योग्यता का विधानानुसार संक्षिप्त परिचय

श्री साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक सघ की सदस्यता के लिए आवश्यक है कि-इसके प्रत्येक सदस्य श्री वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहन्त सिद्ध भगवान् को ही देवाधिदेव माने। गुरु उन्हीं को माने जो जिनाज्ञा के आराधक हों। जिन मार्ग में पूर्ण श्रद्धालु पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति के पालक हों पादविहारी, रजोहरण मुंहपति धारी हों। जिनकी श्रद्धा प्ररूपणा शुद्ध एवं निर्दोष हो। सम्यग्ज्ञान और दर्शन को मूल धर्म तथा श्रावकों के व्रत और मुनिराजों के महाव्रत रूप सम्यग् चारित्र तथा द्वादशविध तप को ही चारित्र धर्म मानने वाला हो।

२ इस सघ के सदस्यों की तीन श्रेणियाँ हैं, जो इस प्रकार है।

१ सामान्य श्रावक—उपरोक्त श्रद्धान युक्त होकर प्रतिदिन कम से कम २१ नवकार मन्त्र का स्मरण करे (२) बिना छाना पानी नहीं पीवे और (३) मद्यमांस का भक्षण तथा इस प्रकार का व्यापार नहीं करे।

२ विशिष्ट श्रावक—उपरोक्त नियम के साथ कम से कम इन नियमों का पालन करे।

(१) पांच अणुव्रतों का पालन करे (२) एक मास में कम से कम ६ दिन, रात्रि-भोजन का त्याग करे (३) एक मास में कम से कम १० सामायिक करे व शेष दिनों में एक माला नवकार मन्त्र की गुने और शिक्षित हो तो १० मिनिट धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करे और (४) पाक्षिक प्रतिक्रमण करे। ये श्रावक इस संघ के संरक्षक माने जावेंगे।

३ सर्वोच्च श्रावक—(१) कम से कम बारह व्रतों का पालन करे (२) प्रतिदिन प्रतिक्रमण करे (३) प्रतिदिन सामायिक करे और २० मिनिट तक स्वाध्याय करे (४) प्रतिदिन चौदह नियम चितारे। (५) रात्रिभोजन नहीं करे। ये श्रावक, इस संघ के स्तंभ होंगे।

विशेष जानकारी विधान देख कर प्राप्त करलें।

उपरोक्त नियमों को देख और समझकर इसकी यथार्थता पर विचार करें और जैनत्व के सर्वथा अनुकूल लगे तो प्रवेश पत्र भरकर संघ के सदस्य बनें। सदस्य बनने का कोई शुल्क नहीं है। प्रवेश पत्र संघ से प्राप्त होसकता है।

॥ णमो सिरि सुयदेवयाए ॥

श्री विपाक सूत्र

[सुखविपाक नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध]

तए कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयर गुणसिले चेइए, सुहम्मे समोसढे, जंबू जाव पज्जुवासमाणे एव वयासी-जइणं भंते! समणेण जाव संपत्तेण दुहविवागाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सुहविवागाणं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? तएणं से सुहम्मे अणगार जंबू अणगार एव वयासी- एव खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा-

१ सुबाहू २ भद्दणंदी ३ सुजायए ४ सुवासव, ५ तहेव जिणदासय, ६ धणवइय, ७ महब्बले। ८ भद्दणंदी, ९ महच्चंद, १० वरदत्ते, तहेवय ॥

जइणं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस-अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्सणं भंते! अ-
णं समणेण जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते?
म्मे अणगारे [illegible] र एव वयासी ॥

भावार्थ -अवसर्पिणी काल के चतुर्थ 'दुखम-दुस्सम' आरे में अन्न, धन, तथा मानव समुदाय से परिपूर्ण राजगृह नाम का सुन्दर और विशाल नगर था। उस नगर के बाहर गुणशील नाम का एक चैत्य-उद्यान था। उस उद्यान में त्रिजग-वन्दन त्रिशलानन्दन भगवान श्री महावीर देव के पंचम गण नायक श्री सुधमास्वामी ने अपने शिष्य-परिवार सहित, मूल भवोदधि भव्य जीवों के हितार्थ शुभ पदार्पण किया। कैसे थे वे महाभाग आर्य श्री सुधर्मा अणगार ? जाति सम्पन्न-उनका -मातृपक्ष विशुद्ध था। कुल सम्पन्न-पितृपक्ष भी निर्मल था। शास्त्रकारों ने उनका परिचय इस प्रकार प्रकट किया है। यथा - "बल सम्पण्णे, विणय सम्पण्णे लाघव सम्पण्णे, ओयंसी, तेयंसी, वयंसी, जसंसी, जियकोहमाणमायालोह, जिवियामामरणभय विप्पमुक्के," इत्यादि, वे आर्य श्री सुधर्मास्वामी अनगार बलयुक्त, विनय संयुक्त तथा लाघव गुण विशिष्ट थे, (द्रव्य और भावापेक्षा लाघव के दो प्रकार हैं, अत्यन्त अल्प उपधि रखना यह द्रव्यापेक्षा लाघव गुण है, और भावापेक्षा लाघव गुण तीन गौरवों[1] से सर्वथा मुक्त होना है) तपश्चर्यादि के फल स्वरूप जो तेज प्रकट होता है वह ओज, तथा तेजो-लेश्या के द्वारा समुद्भूत शारीरिक चमक- तेज कहलाती है। भगवान श्री सुधर्मास्वामी इन दोनों से विभूषित, ओजस्वी और तेजस्वी भी थे। उनके वचनों के प्रति भव्य प्राणियों के हृदय में अनुराग था। कारण यह था कि उनके वचनों से प्राणी जगत का सदा सर्वदा हित ही होता था, और वे कभी भी वाणी से सावद्य वचनों का उच्चारण नहीं करते थे। शास्त्रोक्त

[1] इड्ढि गारवय १, रसगारवेय २, साया गारवय ३ ॥ इत्युक्तम्

कथन से वचनों में मायवता कषाय, चतुष्टय व मज्ञाय से ही आती है। वे महामुनि क्रोध मान, माया और लोभ व दुर्गुण विजयी थे। उन्हें जीवन और मरण में न मोह था और न भय ही, अर्थात् जीवन और मरण के प्रति हृदय में सदा समभाव था। जैसा कि शास्त्रकारों ने निर्देश किया है यथा -"समभाव- भावितात्मा" न वे जीविताकांक्षी थे और न मरणाकांक्षी ही। वे ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के धारी तथा व आभिनिबोधिक ज्ञान, (मतिज्ञान) श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यव ज्ञान, इन चार ज्ञान से सुशोभित थे।

वे महाभाग उस उद्यान में पधारकर मुनिकल्प के अनुसार अवग्रह- आज्ञा लेकर उतरे और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे

निग्रन्थ श्रेष्ठ श्री जम्बूस्वामी ने विनय पूर्वक आचार्य प्रवर से इस प्रकार पूछा-हे भगवन्! श्रमण भगवान श्री महावीर देव ने सुखविपाक नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध का क्या अध्ययन स्वरूप भाव निरूपण किया है तो हे भगवन्! उन्हीं संसार तारक महाप्रभु ने इस सुखविपाक नाम के द्वितीय श्रुत स्कन्ध का क्या भाव प्रतिपादित किया? इस प्रकार पूछने पर श्री सुधर्मा अनगार ने श्री जम्बू अनगार को सम्बोधित करते हुए कहा - प्रियवत्स जम्बू! सिद्धिगति प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सुखविपाक नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। तद्यथा -

सुबाहु १ भद्रनन्दी २ सुजात ३ सुवासव ४ जिनदास ५ धनपति ६ महाबल ७ भद्रनन्दी ८ महाचन्द्र ९, और वरदत्त १०। पुनः आर्य श्री जम्बूस्वामी से निवेदन हो,

पूछते हैं कि हे भदन्त ! इस सुखविपाक नामक द्वितीय श्रुत स्कन्ध के श्रमण भगवान् महावीर ने दश अध्ययन प्ररूपित किये हैं, परन्तु हे भगवन् ! उनमें से उसके प्रथम अध्ययन का उन्हीं त्रिकालज्ञ त्रिलोकदृष्टा श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने क्या भाव प्रतिपादित किया है ? इस प्रकार आर्य जम्बू-स्वामी द्वारा पूछे जाने पर भगवान सुधर्मास्वामी ने प्रथम अध्ययन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा ॥१॥

एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थि-सीसे णाम णयरे हो था, रिद्धत्थमिय समिद्धे । तत्थणं हत्थि-सीसस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं पुप्फकरंडए णाम उज्जाणे हो था । सव्वोउय० । तत्थणं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खायतणे होत्था दिव्व० तत्थणं हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तू णाम राया होत्था महया० । तस्सणं अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणी पामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि हो था । तएणं सा धारिणी देवी अण्णयाकयाइ तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सीहसुमिणे पासइ, जहा मेहस्स जम्मणं तहा भाणियव्वं, णवरं सुबाहु कुमारे, जाव अलं भोगसमत्थं यावि जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पंच पासायवडिंसगसयाइं करांति अब्भुग्गय० भवणं० एत्थं जहा महब्बलस्स रण्णो णवरं पुप्फचूला-पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकण्णगसयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति । तहेवपंचसइओदाओ जाव उप्पिं पासायवरगए

पुप्फमालेहिं जाव विहरइ ॥२॥

भावार्थ – आर्य जम्बू! राजकुमार सुबाहु का चरित्र इस प्रकार है। वर्तमान अवसर्पिणी कालके चतुर्थ आरे में हस्तिशीर्ष नामक एक नगर था, जो विशाल भवनों से युक्त स्थिर निर्भय एवं धन-धान्यादि से समृद्ध था। उस हस्तिशीर्ष नगर के बाहिर की ओर ईशानकोण में 'पुष्पकरण्डक' नाम का एक सब ऋतुओं के पुष्प और फलों से समृद्ध उद्यान था। उस बगीचे में 'कृतवन माल प्रिय' यक्ष का एक आयतन था। वह बहुत ही रमणीय था। वहां के शासक महाराजा अदीनशत्रु थे। जिस प्रकार महा हिमवान् गिरिराज पर्वतों की अपेक्षा ऊंचाई से गंभीरता से, विष्कम्भ से, एवं परिणाहादि से तथा रत्नमय पद्मवर वेदिका से, नाना मणियों एवं रत्नों के कूट से और कल्पवृक्षों की श्रेणी आदि से क्षेत्र की मर्यादा (धारने) करने वाला होने के कारण महान् माना जाता है, ठीक उसी प्रकार महाराजा अदीनशत्रु भी अन्य राजाओं की अपेक्षा जाति, कुल, न्याय नीति आदि से विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक शङ्ख, शिला, प्रवाल, राज्य, सैन्य, राष्ट्र, सवारी, कोश, एवं कोष्ठागार इत्यादि द्वारा जाति और कुल की मर्यादा रखने के कारण महान थे। ये सज्जन प्रिय, मन को आनन्द कारी और निर्मल यश एवं कीर्तिरूप सौरभ से सुरभित होने से मलय पवन के समान थे, तथा औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्यादि गुणों से सुमेरुपर्वत के सदृश थे। महाराजा अदीनशत्रु के अन्तःपुर में धारिणी-देवी प्रमुख

(राणियां) थीं।　　की बात है जब कि

किसी समय　　के सोने योग्य

थी। उसने　　में

स्वप्नफल, राजकुमार का जन्म आदि वर्णन श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र के प्रथम अध्ययन में वर्णित राजकुमार मेघकुमार के जन्म के वर्णन की तरह यहां पर भी समझ लेना चाहिए। इसमें विशेषता यही थी कि—राजकुमार मेघ की माता को अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ था। इनकी माता को ऐसा नहीं हुआ, इस शुभ स्वप्न से राजकुमार सुबाहु का जन्म हुआ। सुबाहुकुमार को माता और पिता ने जब पर्ण पूर्ण रूप से भोगों को भोगने में समर्थ जाना तब उन्होंने पांचसौ सुन्दर प्रासाद इनके लिये निर्माण करवाए। ये प्रासाद गगनचुम्बी थे। अत्यन्त धवल होने के कारण ऐसे जान पड़ते थे कि मानों ये हँस ही रहे हैं। इनमें नाना प्रकार की मणियों सुवर्ण एवं, रत्नों की विविध रचना से अनेक चित्र बने हुए थे। राजा ने उन प्रासादों के बीचोंबीच एक बड़ाभारी भवन भी बनवाया, जो अपनी शोभासे अद्वितीय एवं विशेष विस्तृत था, वह छहों ऋतुओं के समय की शोभा से सम्पन्न था।

श्रीमद्भगवती सूत्र में जिस प्रकार महाराजा महाबल के विवाह का वर्णन किया गया है उसी प्रकार सुबाहुकुमार के विवाह का वर्णन भी समझना चाहिए। महाबाहु राजकुमार सुबाहु का पांच सौ (५००) राजकुमारिकाओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था जो उन्हीं के योग्य गुण सम्पन्न थीं। राजकुमारी पुष्पचूला इन सब में अग्र थी। इन सभी राजकन्याओं का एक ही दिन में सुबाहुकुमार के साथ विवाह सम्पन्न हुआ था। जिस प्रकार श्रीमद्भगवती सूत्र में वर्णित महाराजा महाबल को श्वसुर पक्ष से दहेज में सुवर्ण आदि दायभाग ५०० की संख्या में प्राप्त हुआ था, ठीक इसी प्रकार कन्याओं के जनक जननी से भी अपने जामाता सुबाहुकुमार को ५००

की सख्या म प्रत्यक दहज की चीजें प्रदान की गई थी। राजकुमार सुबाहु इन पाच सौ नवविवाहिता राजकुमारियो के साथ ऊपरि भवनों में रह कर यथा नाना प्रकार क वाद्यों (बाजे, वीणा इत्यादि) को सुनते जो बत्तीस प्रकार के नाटक दखने। इस प्रकार मनुष्य सम्बधी सभी काम भोगो को भोगते हुए रहने लगे ॥ ९ ॥

तण कालेण तेण समएणं समणे भगव महावीरे समोसढे परिसा निग्गया। अम्मापियरो जहा कूणिए निग्गए। सुबाहू वि जहा जमाली तहा रहेण निग्गए, जाव धम्मो कहिओ। राया परिसा पडिगया। तए ण से सुबाहुकुमार समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठे उट्ठाए-उट्ठेइ, उट्ठित्ता जाव एव वयासी – सद्दहामि ण भंते! निग्गथं पावयण, जाव जहा ण देवाणुप्पियाण अतिए बहवे राईसर, जाव प्पभिइओ मुडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया णो खलु अह तहा सचाएमि मुंड भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए, अहण्णं देवाणुप्पियाण अतिए पचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जिस्सामि। 'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।' तएण से सुबाहुकुमार समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पचाणुव्वइय, सत्त सिक्खावइय, दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव रह दुरूहइ दुरुहित्ता जामेव दिस पाउब्भूए

दिम पडिगए ॥ ३ ॥

भावार्थ -उस ही काल और उस ही समय में श्रमण भगवान् महावीर प्रभू ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए हस्ति शीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक बगीचे में पधारे । लम्बे समय से जिन देवाधिदेव महा प्रभू महावीर के पवित्र दर्शनों के लिए कोटि कोटि नेत्र आशा लगाए बैठे थे उन्होंने जब अपने आराध्य देव का शुभ पदार्पण सुना तो मनमयूर आल्हादित होकर घर आंगन में नाच उठा, और करने लगा अपने भाग्य की सराहना। सचमुच यह प्रसंग उनके जीवन का एक अनूठा व अद्वितीय मंगलमय अनागत का प्रबल प्रतीक था। भगवान का शुभागमन जानकर जनता उन महा प्रभु के दर्शनार्थ अपने अपने आवासों में से चल निकली । महाराजा अदीनशत्रु ने भी कूणिक की तरह विशाल ठाठ बाट से प्रस्थान किया। श्रीमद्भगवती सूत्र में प्रभु वंदना के लिए जमाली के निकलने का जिस प्रकार वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार से राजकुमार सुबाहु भी जबा-सारूढ श्रमण भगवान महावीर प्रभु की चरणानुवंदना के लिये राजमहलों से रथ पर सवार होकर निकला । पांच प्रकार के अभिगमन से भगवान के सन्निकट पहुँच कर वह वन्दन नम-स्कार पूर्वक प्रभु की पर्युपासना करने लगा । भगवान महावीर प्रभु ने उस विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया । परिषद् और राजा धर्म देशना श्रवण कर अपने अपने स्थान पर गये । तद्-नन्तर सुबाहुकुमार त्रिलोकीनाथ श्रमण भगवान महावीर के श्रीमुख से श्रुत चारित्र रूप धर्म का स्वरूप श्रवण कर एवं उसका सम्यक् प्रकारेण चिन्तन मनन कर हृदय में अत्यन्त-प्रफुल्लित और संतुष्ट होता हुआ अपने स्थान से उठा और उठकर प्रभु

की वन्दना की और नमस्कार किया। पश्चात् इस प्रकार बोला,-"हे भदन्त! मैं इस परम कल्याणकारी निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ तथा मैं मानता हूँ कि निर्ग्रन्थप्रवचन ही एक मात्र निर्विकारित सत्य तथा यही परमार्थ है, ऐसा मुझे आत्मीय दृढ़ विश्वास है। निर्ग्रन्थ कथित (निर्दिष्ट) प्रवचन की मैं श्रद्धा करता हूँ। आपके वचन की मैं प्रतीति करता हूँ। अमृतधारा के समान हे नाथ! मैं आपके इस प्रवचन में रुचि रखता हूँ। हे प्रभो! जिस प्रकार अनेक राजेश्वर, तलवर माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी और सेनापति आदि आपके पास धर्म श्रवण कर केश लोच आदि क्रियारूप द्रव्यमुंडन से और कषाय के परित्याग रूप भावमुंडन से संयुक्त होकर, घर छोड़ कर प्रवर्जित हुए हैं। हे नाथ! मैं उस प्रकार मुंडित होकर, गृह का परित्याग कर प्रव्रज्या धारण करने में असमर्थ हूँ। परन्तु हे प्रभो! मैं आपके पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत, इस प्रकार द्वादशविध गृहस्थ (श्रावक) धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।" इस प्रकार राजकुमार सुबाहु की प्रार्थना के उत्तर में तीर्थंकर प्रभु ने फरमाया,-"जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, परन्तु विलम्ब मत करो"। इस प्रकार महाप्रभु के महा वाक्य श्रवण कर धारिणिनन्दन सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी से पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप द्वादशविध गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया, और गृहस्थ धर्म को अंगीकार कर वन्दन नमस्कार कर के रथारूढ़ होकर जिस दिशा से आए थे उस ही दिशा में वापिस गये॥ ३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावी-रस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयम गोत्तेणं

जाव एव वयासी—अहो ण भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे कंते कंतरूवे पिए पियरूवे मणुण्णे मणुण्णारूवे मणामे मणामरूवे सोम्मे सुभगे पियदंसणे सुरूवे बहुजणस्स वि य ण भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे साहु जणस्स वि य णं भंते ! सुबाहुकुमारे जाव सुरूवे ! सुबाहुकुमारे णं भंते ! इमे एया रूवा उराला माणुससारिद्धि किण्णा लद्धा? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमण्णागया ? के वा एस आसी पुव्वभवे जाव अभिसमण्णागया ? ॥४॥

भावार्थ—उसकाल उससमय में श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के ज्येष्ठ शिष्य गणधर श्री इन्द्रभूति नामक अनगार जो गौतम गोत्री थे, प्रभु के समीप उपस्थित होकर अपनी जिज्ञासा इस प्रकार प्रकट की-,हे भदन्त ! महदाश्चर्य है कि राजकुमार सुबाहु समस्त जनों के मनोरथ पूर्ण करने वाला होने से इष्ट है । शरीराकृति इनकी बड़ी ही मनोहर है, इसीलिए इष्ट रूप है । सबका सहायक होने से कान्त-अभिलषणीय है। यह तो भाग्यवश भी होसकता है, अत कहते हैं कि यह रूप से भी कान्त है। यह सबजनों के उपकार करने में परायण है, इसी कारण से प्रिय है, सर्वाङ्ग सुन्दरता से प्रियरूप है। यह मनोज्ञ भी है, क्यों कि प्रत्येक जीवधारी इसे अपने अन्तःकरण से सुन्दर मानते हैं, एव दर्शक जनों की चित्तवृत्ति का आकर्षक होने से भी मनोज्ञरूप है। जो प्राणी इसे एक समय भी देख लेता है वह इसकी भव्य आकृति का सदा स्मरण किया करता है, अथवा सकट ग्रस्त विपत्ति काल में भी सब प्राणधारियों के लिए सहायता

पहुंचाता है, इसलिये भी यह मनोज्ञ (नयनाभिराम) है। मनोज्ञ रूप अपद्वारत है, इसलिये कि इसकी सुन्दराकृति सकल जनों के मनानुकूल है। भद्र प्रकृति (स्वभाव) वाला होने से समस्त जीवों को इससे आल्हाद उत्पन्न होता है, अत यह सौम्य है। सदा हित विधायक मार्ग में ही इसकी प्रवृत्ति रहती है अतएव यह सुभग है। जो व्यक्ति इसे एकवार भी देख लेता है उसे इसके प्रति प्रेम का आविर्भाव होजाता है, इस अपेक्षा से यह प्रिय दर्शन है, अपूर्व रूप और लावण्य से यह अलङ्कृत है, इसलिये यह सुरूप वाला है। यह सुबाहु कुमार 'इष्ट से सुरूप पर्यन्त सब विशेषणों से संयुक्त है, किन्हीं खास जनों की दृष्टि से ही इष्ट हो यह बात नहीं है, किन्तु हे तीर्थपते ! यह बहुत जनों की दृष्टि में भी इसी प्रकार है, और तो और किन्तु यह तो साधु जनों की दृष्टि में भी इसी प्रकार से है। हे भगवन् ! इस सुबाहुकुमार ने ये उपलब्ध स्वरूप वाली-सुबाहु कुमार में सम्प्राप्त, उदार प्रधान, सब श्रेष्ठ मानवोचित ऋद्धियां-रूप लावण्यादि सम्पत्तियां-किस कारण से उपार्जित की किस प्रकार से प्राप्त कीं, किस तरह अपन स्वाधीन की, और किस कारण से यह सब प्रकार से इनका भोक्ता बना, ? पूर्व भव में यह कौन था ? इसका नाम क्या था ? क्या गोत्र था ? किस नगर में, किस ग्राम में अथवा किस देश में इसका जन्म हुआ ? इन्होंने पूर्व भव में कौनसा अभयदान, सुपात्र दान दिया ? स्वयं किस प्रकार का अरस, विरस, आदि आहार किया ? कौन से शीलादिक प्रसिद्ध व्रत का आचरण किया ? किस तथारूप श्रमण निर्ग्रन्थ के अथवा बारह व्रतधारी श्रावक के पास तीर्थंकर प्रतिपादित पाप निवृत्तिरूप एक भी निरवद्य वचन सुना और सम्यक् प्रकारेण उसका चिन्तन मनन किया ?

जिससे इसने ये उदार प्रधान सर्वोत्तम मनुष्य सम्बन्धी रूप लावण्यादि विभूतियां प्राप्त की हैं ॥४॥

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बूदीवे दीवे भारहवासे हत्थिणाउरे णामं णयरे होत्था, रिद्धत्थमियसमिद्धे तत्थणं हत्थिणाउरे णयरे सुमुहे णामं गाहावई परिवसई, अड्ढे । तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा णामं थेरा, जाइसपण्णा जाव पचहिं समणसएहिं सद्धिं सपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दुइज्जमाणा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहा पडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी सुदत्ते णामं अणगारे उराले जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ ॥५॥

भावार्थ—गणधर देव भगवान् श्री गौतम स्वामी की इस प्रकार की जिज्ञासा जानकर तीर्थदेव श्री महावीर स्वामी ने फरमाया कि—हे गौतम ! उसकाल उस ही समय में इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नामका एक नगर था, जो ऋद्धि आदि से सम्पन्न था। उस हस्तिनापुर नगर में एक गाथापति रहता था, जिसका शुभ नाम सुमुख था। वह धनादि वैभव सम्पन्न था तथा दूसरे अन्य जन इसका पराभव नहीं कर सकते थे। एक समय उसी अवसर में श्री धर्मघोष नामक स्थविर जो जाति सम्पन्नादि विशेषणों से संयुक्त थे, पांचसौ अनगारों के साथ पूर्वानुपूर्वी तीर्थंकर भगवान् प्रतिपादित पद्धति

से एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करते हुए जहां हस्तिनापुर नगर था और उसमें जहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था वहां पर आए तथा वहां आकर वे साधुकल्प के अनुसार वन पालक से वसति की आज्ञा प्राप्त कर तप और संयम से अपनी अन्तरात्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस काल उसही समय में उन आचार्य प्रवर श्री धर्मघोष के अन्तेवासी सुदत्त नाम के मुनि थे। वे घोर तपस्वी थे। वे परीषह और उपसर्ग का सहन करने में धीर एवं कषाय रूपात्मक आन्तर शत्रुओं का समूलन नाश करने में शूरवीर थे। आन्तर तनों से दुर्जय ऐसे सम्यक्त्व और शीलादिक महाव्रतों के धारक थे। अनेक योजन परिमित क्षेत्र में रहने वाली वस्तु को भी भस्मसात करने वाली तेजोलेश्या को अपने शरीर के भीतर संकुचित करके रखते हुए थे और वे मास मास क्षपण की तपस्या करते हुए विचरते थे ॥४॥

तए णं से सुदत्ते अणगारे मासक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी तहेव धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे। तए णं से सुमुहे गाहावई सुदत्तं अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ तुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता सुदत्तं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं विउल

असण पाण खाइम साइम पडिलाभेस्सामित्ति कट्टु तुट्ठे, पडि-
लाभेमाणे तुट्ठे, पडिलाभणत्ति तुट्ठे ॥८॥

भावार्थ -तत्पश्चात् वे श्री सुदत्त अनगार पारणा के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करके भगवान् के गौतमस्वामी की भांति यथाक्रम (भिक्षा) गोचरी के समय में आचार्य शिरोमणि श्री धर्मघोष आचार्य श्री से भिक्षा के लिए आज्ञा प्राप्त कर हस्तिनापुर नगर के उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए घूमते हुए प्रसिद्ध नागरिक सुमुख गाथापति (गृहस्थ) के घर पर पहुँचे। ज्यों ही उस सुमुख गाथापति ने सुदत्त अनगार को अपने घर पर पधारते हुए देखा त्योंही उन महाभाग परम तपस्वी मुनिराज श्री के परम पुनीत संक्लेश नाशक दर्शन करके वह बहुत ही हर्षित हुआ। सुदत्त अनगार को देखकर उसके मनमें अपरिमित तृप्ति हुई। मुनि दर्शन से उसके हृदय में असाधारण तथा अपूर्व धर्मानुराग जाग्रत हुआ। हर्षातिरेक से उसका अन्तःकरण भरगया। आनन्द के मारे उसकी चित्तवृत्ति उल्लसित होने लगी। अविलम्ब वह अपने सुखासन से उठा और उठकर पादपीठ से होकर वह उससे नीचे उतरा और उसने अपने पैरों में से पादुकाएं उतारीं। पादुकाएं उतार कर उसने एक शाटिक उत्तरासंग-वस्त्र विशेष धारण किया। वस्त्रधारण कर फिर वह सुदत्त अनगार के सम्मुख सात-आठ पग चला, चलकर उसने तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की अर्थात् अञ्जलि बाँध कर दक्षिण कर्ण मूल से प्रारम्भ कर ललाट प्रदेश पर घुमाते हुए वाम कर्ण के अन्त तक चक्राकार घुमाकर फिर उस अञ्जलि को अपने मस्तक पर स्थापन करना उसको आदक्षिण प्रदक्षिणा कहते हैं।

सुमुख गाथापति के भावों का वर्णन करते हुए पू० श्री घासी-लालजी महाराज ने श्री विपाकसूत्र की टीका में निम्न ३ श्लोक दिए हैं।

'अद्यमे फलितो गेहे, सुरद्रु कुसुमं विना।
अनभ्रा चातुला वृष्टि-र्मरुस्थल्यां सुरद्रुमः ॥१॥
दरिद्रस्य गृहे हेम,-निचयः प्रकटोऽभवत्।
प्रीणितोऽहं त्वदालोकात्, पीयूष पानतो यथा ॥११॥
परोपकृति धौरेया,-ऽङ्गीकुरु वचनं मम।
भवत्पाद रजः पातात्, पवित्री कुरु मे गृहम् ॥३॥'

अर्थ—हे भदन्त! आज आपका मेरे घर में पधारना मानो मेरे घर में कल्पवृक्ष बिना फूल के ही फला है बिना बादल के ही पर्याप्त वृष्टि हुई है, या यों कहूँ कि मरुस्थली में कल्पवृक्ष उगा है ॥१॥

दरिद्र के घर आंगन में मानों निधान प्रगट हुआ है। हे भदन्त! मैं आपके दर्शन से इतना प्रसन्न हूँ, जैसे कोई चिरकाल का तृषित प्यासा अमृत पान से प्रसन्न होता है ॥२॥

हे परोपकारी महापुरुष! आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर अपने चरणरज के कण से हमारे घर को पवित्र करें ॥३॥

नमस्कार करने के बाद रसोईघर में आया। "मैं आज अपने हाथ से निर्ग्रंथ मुनिराज को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा," ऐसा विचार कर प्रसन्नचित्त हुआ, फिर दान देते समय "मेरे अहो भाग्य हैं कि आज मैं मुनिराज को विपुल अशनादि दे रहा हूँ," ऐसा सोचकर प्रसन्नचित्त हुआ और जब दान दे चुका तब भी "अद्यमे सफलं जन्म, आज मेरा जन्म सफल हुआ कि मैंने अपने हाथ से धर्म देव को विपुल अशनादि प्रदान कर लाभ प्राप्त किया है," ऐसा विचार कर भी प्रसन्न चित्त हुआ ॥८॥

तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं, दायगसुद्धेणं, पडिग्गाहगसुद्धेणं, तिविहेणं तिकरण सुद्धेणं सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्ती कए मणुस्साउए णिबद्धे, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तंजहा- १ वसुहारा वुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाडिए ३ चेलुक्खेवए ४ आहयाओ देवदुंदुहीओ ५ अंतरा वि य णं आगासंसि अहोदाणं अहोदाणं घुट्ठे य। हत्थिणाउरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवं आइक्खइ एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ धन्ने णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई जाव तं धन्ने णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई ॥ ७ ॥

भावार्थ—तत्पश्चात् उस गाथापति सुमुख ने द्रव्य की शुद्धि से (निर्दोष एवं उपयुक्त आहार) दायक की शुद्धि से (प्रशस्त भाव युक्त अपनी शुद्धि से) प्रति ग्राहक की शुद्धि से (अतिचार रहित तप और संयम के आराधक सुदत्त जैसे महा मुनि की शुद्धि से) इन तीन प्रकार की शुद्धियों से तथा तीन करण की शुद्धि से [मानसिक, वाचिक और कायिक शुद्धि से] सब सुपरकृति भिक्षा के अभिग्राहक उन मुनि श्रेष्ठ श्री सुदत्त अनगार को आहार दान प्रतिलाभ कर अपना संसार अल्प किया, अर्थात् परिमित संसारी हुए। उन्होंने मनुष्यायु का बन्ध किया। मुनिदान के प्रभाव से उनके घर आंगन में पांच दिव्य बात गगन भाग से प्रकट हुईं। वे इस प्रकार हैं— १ आकाश से देवों ने सुवर्ण वृष्टि की २. पांच वर्णों के पुष्पों की

वृष्टि की, ३ वस्त्र बरसाये, ४ देवदुंदुभी (वाद्यविशेष) बजी, ५ और आकाश में देवताओं ने प्रशंसा की-कि "सुमुख-गाथापति भाग्यशाली है, जिसने सुदत्त जैसे मुनि-पुङ्गव को आहार दान दिया। इनके जैसा दानशील और कौन हो सकता है?" तथा हस्तिनापुर में आकस्मिक देव वाणी तथा देवदुंदुभी का नाद सुनकर सब लोग तीन कोने [त्रिकोण] के मार्ग पर, जहा तीन मार्ग मिलते हों, जहा चार मार्ग मिलते हों, जहा बहुत मार्ग हों, ऐसे मार्गों पर और राजमार्ग तथा सामान्य मार्ग इन सब जगह परस्पर एक दूसरे से मिलकर, हर्षातिरेक से गद्‌गद्‌स्वर होकर [एव भासइ] इस प्रकार कहते हैं-कि यह सुमुख गाथापति प्रबल भाग्यशाली है, देखो न! इसकी महिमा देवता तक गाते हैं [एव पन्नवेइ] इस प्रकार प्रज्ञापना करते हैं यह बात-निर्विवाद सत्य है कि-दान, स्वर्ग, तथा अपवर्ग के द्वार को उघाड़ने में समर्थ है। [एव परूवेइ] इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि-हम लोगों का भी कर्त्तव्य है कि हम लोग भी सुपात्रों में दान दिया करें। पुन कहते हैं कि-देखो, जब देवता तक भी सुमुख गाथापति की प्रशंसा कर रहे हैं-तो हम लोगों की तरफ से भी यह अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं। यावत्

शब्द से ग्राह्य पद निम्न प्रकार से है-"सपुण्णेणं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई, कयत्थेणं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई, कयपुण्णेणं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई, कयलक्ख-णेणं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई, कयविहवेणं देवा-णुप्पिया! सुमुहे गाहावई, सुलद्धेणं देवाणुप्पिया! तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजीवियफले, जस्स णं इमा एया-

स्या उराला माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमएणा गया !" इनका अर्थ स्पष्ट है कि-हे देवानां प्रिय ! यह गाथापति प्रकृष्ट पुण्य शाली है, इसने अब जन्मान्तर के लिए इष्ट सिद्धि रूप प्रयोजन को सिद्ध कर लिया है। इसने पूर्व भव में श्रेष्ठ शुभ पुण्यार्जन किया है। उसीके फल स्वरूप सुपात्र दान देने का सुअवसर हाथ लगा। इसने अपनी पुण्यरेखा, जीवन रेखा आदि शुभ लक्षणों को सफल कर लिया है। सत्पात्र दान देने रूप शुभ कार्य के करने से इसका धन (लक्ष्मी) पाना सफल हो गया है। कोटि २ धन्य है इस सुमुख गाथापति को कि जिसने अपने जन्म और जीवन का फल वास्तविक रूप से प्राप्त कर लिया है। देखो तो सही, यह प्रत्यक्ष में दिखती हुई (दृश्य मान) ऐसी उदार मनुष्य भव सम्बंधी ऋद्धि कि-जिसमें किसी भी वस्तु की न्यूनता नहीं है, यह इसे प्राप्त हुई है, इसे इस पर पूर्ण रूपसे अधिकार प्राप्त हुआ है, और यह इसे निर्विघ्न रूप से भोग रहा है। इसीसे यह बात पूर्ण रूप से सत्य प्रतीत होती है कि यह विशिष्ट पुण्य शाली है और उसी पुण्य के उदय का यह प्रतिफल है कि जो इसे सुदत्त जैसे महामुनि को आहार दान देने का लाभ अनायास ही प्राप्त हुआ। ॥ ७ ॥

तएणं से सुमुहे गाहावई बहूइं वाससयाइं आउयं पालेइ, पालित्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव हत्थीसीसे णयरे अदीण-सत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे। तएणं सा धारिणीदेवी सयणिज्जंसि, सुत्तजागरा ओहीर-माणी २ तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चेव जाव उप्पिंपासाए विहरइ, तं एवं खलु गोयमा ! सुबाहुणा इमा एयारूवा उराला माणु-

मरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया। पभू णं भंते! सुबाहु कुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अण-गारियं पव्वइत्तए? हंता पभू ॥८॥

भावार्थ–उस गाथापति सुमुख ने मनुष्य भव की आयु भोगी। अपनी परिपूर्ण आयु भोगकर वह अवसान के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त होकर इसी हस्तिशीर्ष नगर में अदीन-शत्रु राजा की धारिणी रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। जब वह गर्भ में आया तब धारिणी देवी सुख शय्या पर कुछ जाग्रत और कुछ सुषुप्तावस्था में निद्रा ले रही थी, कि उसने स्वप्न में एक केसरीसिंह को देखा। गर्भ स्थिति पूर्ण होने पर उसके बालक का जन्म हुआ। जिसका नामकरण एवं विवाह आदि संस्कार सब-पहले ही बता दिये हैं। राजकुमार बड़ा होने पर अपने भवन में रहकर उत्कृष्ट मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगते हुए रहने लगा। पतन्थ हे गौतम! पूर्वभव में सुपात्र दान के प्रभाव से निश्चय ही सुबाहु राजकुमार ने यह प्रत्यक्ष दृश्यमान शरीरादि सम्पत्ति रूप एवं उत्कृष्ट मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धियां प्राप्त की हैं और उन्हें यह भोग भी रहा है।

भगवान् श्री गौतम स्वामी पृच्छा करते हैं कि हे भदन्त! यह राजकुमार सुबाहु, देवानुप्रिय (आपके) पास से धर्म श्रवण करके द्रव्य तथा भाव रूप से मुंडित हो करके प्रव्रज्या लेने के लिए समर्थ है क्या? प्रश्न का समाधान करते हुए परमदयालु प्रभु ने अमृतवर्षिणी वाणी में फरमाया–'हाँ! गौतम! यह सुबाहु कुमार संयम ग्रहण करने में समर्थ है' ॥८॥

तएणं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वन्दइ,

णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णयाकयाइं हत्थिसीसाओ णयराओ पुप्फकरंडाओ उज्जाणाओ कयवणमालप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तएणं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ॥६॥

भावार्थ—राजकुमार सुबाहु का वर्णन परमाराध्य तीर्थंकर प्रभु की वाणी से श्रवण करके श्रमण भगवान् गौतम स्वामी ने त्रैलोक्य मंडित श्रमण भगवान् श्री महावीर देव की अभिवंदना कर नमस्कार किया। वंदन और नमस्कार करके वे संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। एक समय श्रमण भगवान् महावीर देव ने हस्तिशीर्ष नगर के बाहर स्थित पुष्पकरण्डक उद्यान में कृतवनमालप्रिय यक्ष के यक्षायतन से विहार किया, और जनपद देश में विचरने लगे।

सुबाहुकुमार श्रमणोपासक हो गया, वह बारह व्रत धारक श्रावक बन गया। जीव और अजीव तत्व का ज्ञाता भी बनगया तथा श्रमण निर्ग्रंथ मुनिराजों को प्रासुक तथा एषणीय चतुर्विध आहार का दान देता हुआ विचरने लगा॥६॥

तएणं से सुबाहुकुमारे अण्णया कयाइ चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरेइ,

सयरित्ता, दब्भसंथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठमभत्त पगिण्हइ, गिण्हित्ता, पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसह पडिजागरमाणे २ विहरइ॥१०॥

भावार्थ-किसी समय यह राजकुमार सुबाहु चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या और पौर्णमासी के दिन पौषधशाला में आया। वहां आकर सर्वप्रथम पौषधशाला का प्रमार्जन किया। पौषधशाला को प्रमार्जन और पर्यवेक्षण कर लेने के बाद उच्चार, एवं प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, इसके बाद वह दर्भ (एक प्रकार का तृण घास विशेष) का संथारा बिछाया और उस पर बैठा। बैठकर अष्टम भक्त (तेले) का प्रत्याख्यान किया। अष्टम भक्त का प्रत्याख्यान ग्रहण कर अर्थात् पौषध शाला में तीन दिन का पौषध लेकर धर्म की जागरणा करता हुआ विचरने लगा॥१०॥

तएण तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था धण्णा ण ते गामागरणगर जाव सण्णिवेसा, जत्थ ण समणे भगव महावीरे विहरइ। धण्णा ण ते राईसर जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पव्वइत्तए जाव गिहिधम्म, पडिवज्जति। धण्णा ण ते राईसरतलवरमाडवियकोडुंबियसेट्ठिसेणावइ-सत्थवाह पभिअउ जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सुणेंति, ज- इ ण समणे भगव महावीरे

जाव दुइज्जमाणे इहमागच्छेज्जा जाव विहरिज्जा तएणं ग्रहं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वज्जा ॥ ११ ॥

भावार्थ पौषध मे रहे हुए राजकुमार सुबाहु का पूर्व रात्रि और अपर रात्रि के मध्य समय म धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार मन ही मन विचार उद्भव हुआ-

'धन्य है वह ग्राम,(बाड़ से वेष्टित प्रदेश) धन्य है वे आकर (सुवर्ण पर रत्नादिक की उत्पति के स्थान) धन्य है वह नगर,(अठारह प्रकार के करो से रहित स्थान) धन्य है वह खेट, (धूली प्राकार से वेष्टित स्थान) धन्य है वह-मडम्ब, (अढाई कोस तक जिस के मध्य में कोई ग्राम न हो ऐसा स्थान) धन्य है वह द्रोणमुख, (जल स्थल मार्ग से सयुक्त स्थान) धन्य है वह पत्तन, (समस्त वस्तुओ की प्राप्ति का स्थान) पत्तन दो प्रकार के होते हैं-१, जलपत्तन, २ स्थलपत्तन। जहा पर केवल नौका से ही जाया जाता है, वह जलपत्तन है, और जहा गाडी आदि सवारियों से जाया जाता है, वह स्थलपत्तन है, अथवा नौका एव शकट से जो गम्य है वह पत्तन तथा केवल नौका से जो गम्य होता है, वह पट्टन है) धन्य है वह निगम (अनेक वणिग्जनों से बसा हुआ प्रदेश) धन्य है वह आश्रम, (तपस्वियों के रहने का स्थान यह स्थान पहिले तपस्वियों द्वारा बसाया जाता है, फिर पीछे से दूसरे और लोग भी वहा आकर रहने लगते हैं) धन्य है वह सबाह, (कृषकों द्वारा धान्य की रक्षा के लिए बनाया गया दुर्ग भूमि स्थान अथवा पर्वत की चोटी पर रहा हुआ जनाधिष्ठित स्थल विशेष, या जिसमें वहां वहा से आकर मुसाफिर लोग निवास-विश्राम करें ऐसा स्थल विशेष) धन्य है वह सनिवेश,

तएण समणे भगवं महावीरे सुबाहुस्स कुमारस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता पुव्वाणुपुव्विं जाव दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव पुप्फकरंडए उज्जाणे जेणेव कयवणमालप्पियस्स जक्खस्स जक्खायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा जाव विहरइ। परिसा निग्गया, रायाविनिग्गओ। तएण से सुबाहुकुमारे त महया० जहा पढमं तहा निग्गओ, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया, रायाविपडिगओ। तएण से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्महट्ठ० जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ। निक्खमणाभिसेओ, तहेव अणगारे जाए इरियासमिए जाव बंभयारी। तएण से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम०तवोविहाणेहिं अप्पाणं भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे॥सू० १२॥

स्थान् पल्लवित रूप में, पुनः पुष्पित रूप में और फिर फलित रूप में होता है उसी प्रकार सुबाहु राजकुमार का विचार भी हुआ अतएव चिन्तित, कल्पित, आदि पदों की व्यवस्था यहां ठीक ही घटित हो जाती है।

भावार्थ इसके पश्चात् श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी, राजकुमार सुबाहु के पूर्व कथित संयम ग्रहण करने की वाञ्छा रूप अध्यवसाय चिंतित, प्रार्थित, कल्पित मनोगत संकल्प को जानकर तीर्थंकर परम्परा गत विहार करते हुए जहां वह हस्तिशीर्ष नगर था जहां वह पुष्पकरण्डक उद्यान था और जहां वह कृतवनमाल प्रिय यक्ष का यक्षायतन था वहां पधारे। वहां पधार कर संयम मर्यादा के अनुकूल अवग्रह लेकर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। प्रभु का शुभ पदार्पण श्रवण कर जनता अपने अपने स्थान से दर्शनार्थ एवं धर्म श्रवणार्थ निकली। राजा भी अपने राजमहल से निकला। श्रीमद्भगवती सूत्र में वर्णित राजकुमार जमालि की तरह सुबाहु राजकुमार ने भी प्रभु की वंदना एवं उनसे धर्म श्रवण करने की भावना से, पहिले की तरह महानायक भगवान् के समीप आए। प्रभु ने समागत समस्त परिषद् एवं राजा को उद्बोधित करते हुए धर्मोपदेश दिया।[3] उपदेश श्रवण करने के अनन्तर परिषद् एवं राजा सभी अपने अपने स्थान पर वापिस गए, किन्तु राजकुमार सुबाहु ने श्रमण भगवान् श्री महावीर के सन्निकट धर्म श्रवण कर तथा उसे भली भांति हृदय में निश्चित कर आनन्द और हर्ष से प्रफुल्लित एवं पुलकित हो, राजकुमार मेघ की तरह महलों में आकर माता पिता से दीक्षा स्वीकार करने की प्रार्थना की और उत्तर प्रत्युत्तर के बाद माता पिता ने आज्ञा प्रदान कर दी। भव्य महोत्सव के साथ हस्तिशीर्ष नगर के प्रमुख बाजारों में होता हुआ वह राजकीय भव्य जुलूस पुष्प

[3]जीवियं चेव रूवं च विज्जुसंपाय चंचलं। जत्थ तं मुज्झसि रायं, पेच्चत्थं नावबुज्झसे॥ उ० सू० अ० १८ गा० १३॥

करडक उद्यान के सन्निकट पहुंच गया। यहां ... वन्दना करके गले में धारण किए हुए ... से चमकते हुए हारों को उतारा, तत्पश्चात् शरीर पर धारण किए हुए विविध रंग एवं कीमती वस्त्रों को एक एक करके परित्याग कर दिया। इस प्रकार सर्व संगादिवर्जित, अकिंचन होकर पास ही रक्खे हुए रजोहरण मुखवस्त्रिकादि सर्व साधक उपकरणों से युक्त होकर उन अन्तर्यामी महाप्रभु के समीप, "करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं जाव अप्पाणं वोसिरामि," रूप सामायिक चारित्र को भाव पूर्वक ग्रहण किए और अनगार होगए एवं ईर्यादि पांच समिति से सुसम्पन्न होकर नवकोटि से विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत के आराधक बन गये। इस अवस्था में साधु की समाचारी रूप ईर्या भाषादि समिति से, मनो, वाचा तथा काय गुप्ति से सुरक्षित बनकर अपनी दुर्दम्य ऐसी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की। दीक्षित होने के पश्चात् सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के पास सामायिकादि एकादश अङ्ग शास्त्रों का अध्ययन किया। जब एकादश अंग शास्त्रों को वे पूर्णरूपेण अच्छी तरह से पढ़ चुके और चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त एवं द्वादशभक्त आदि विविध तपस्याओं के द्वारा अपनी आत्मा को भावित कर बहुत वर्षों तक इन्होंने सर्वविरति रूप चारित्र पर्याय की आराधना की। पश्चात् एक मास की संलेखना से आत्मा को भूसित (संलेखित) कर और अनशन से साठ भक्तों का छेदन कर, अतिचारों की गुरु के समीप आलोचना पूर्वक परम विशुद्धि करते हुए सुसमाधि भाव से काल (मरण) कर सौधर्म नामक प्रथम स्वर्ग में, जहां

दो सागर की उत्कृष्ट स्थिति (आयु) है, वहाँ देव पर्याय से उत्पन्न हुए ॥१२॥

से ण सुबाहुदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ २ केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झिहित्ता, तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे जाव पव्वइस्सइ । से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्णं परियागं पाउणिहिइ, पाउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिइ । तओ माणुस्सं, पव्वज्जा, बंभलोए, माणुस्सं, महासुक्के, माणुस्सं, आणए, माणुस्सं, आरणए, माणुस्सं, सव्वट्ठसिद्धे । से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे, जाव अड्ढाइं, जहा दढपइण्णे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करिहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि ॥१३॥

॥पढम अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - अब वह सुबाहु देव उस स्वर्ग लोक से, आयु के क्षय से-आयुष्य कर्म के दलियों की निर्जरा से, देव भव के कारण भूत कर्मों की निर्जरा से , आयु कर्म की स्थिति के वेदन से,देव शरीर का परित्याग कर मनुष्य सम्बन्धी शरीर प्राप्त करेगा। यहा शुद्ध परिपूर्ण निरतिचार जिन धर्म प्राप्ति रूप बोधि को प्राप्त कर तथा रूप स्थविरों के पास द्रव्य और भाव रूप से

मुण्डित होकर अगारी से अनगारी बनकर प्रव्रज्या लेगा। इस अवस्था में वह अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय—चारित्र पर्याय का पालन करेगा। यथा विधि ध्यान कर, पुनः वह आलोचन प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त करेगा। पश्चात् काल के अवसर काल कर के सनत्कुमार नाम के तृतीय देवलोक में जहां सात सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वहां देव की पर्याय से उत्पन्न होगा। वहां से च्यव कर फिर यह मानव पर्याय प्राप्त कर पुनः दीक्षित हो काल के अवसर काल कर ब्रह्मलोक नाम के पांचवें स्वर्ग में (जहां दस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है) उत्पन्न होगा। वहां से च्यवकर मनुष्य जन्म ले दीक्षित हो, आयु पूर्ण कर सतरह सागर की उत्कृष्ट स्थिति युक्त महाशुक्र स्वर्ग में जावेगा। वहाँ से च्यवकर मानव पर्याय धारण कर दीक्षा ले, आयु समाप्ति पर आनत नाम के देवलोक में जहां उत्कृष्ट बीस सागर की स्थिति है उत्पन्न होगा। वहां से च्यवकर मनुष्य-भव धारण करेगा एवं दीक्षा लेकर ग्यारहवें आरण नाम के देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न होगा। वहां की २२ सागर प्रमाण स्थिति को भोगकर और वहां से च्यवकर मानव के पर्याय में जन्म लेकर दीक्षित होगा। यहाँ वह अपने पापकर्मों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण कर मृत्यु प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में अहमिन्द्र होगा। यहाँ ३३ सागर की स्थिति है इसे पूर्ण भोगकर सुबाहुकुमार का जीव महाविदेह क्षेत्र में जो आढ्य कुल है, उनमें से किसी एक कुल में जन्म धारण करेगा। श्री उववाई सूत्र में जिस प्रकार दृढप्रतिज्ञ कुमार का वर्णन है उसी तरह यहां इसका भी वर्णन समझना चाहिए। वहां से यह सिद्ध होगा, सकल लोक और अलोक का ज्ञाता होगा, सकलकर्मों से मुक्त होगा, समस्त कर्मकृत विकारों से

रहित होने के कारण शीतलीभूत होगा और समस्त क्लेशों का नाश करेगा। यहां तक कथनकर श्री सुधर्मा स्वामी ने श्री जम्बू स्वामी से कहा कि 'हे जम्बू ! सिद्धिगति प्राप्त श्रमण भगवान् श्री महावीर ने सुखविपाक सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह पूर्वोक्त भाव कहा है। उनके समीप जैसा मैंने सुना उसी प्रकार तुमसे कहा है' ॥३॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

भद्रनन्दी नामक दूसरा अध्ययन

बितियस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभपुरे णयरे थूभकरंडगे उज्जाणे। धण्णो जक्खो धणावहो राया, सरस्सई देवी, सुमिणदंसणं, कहणा, जम्मणं, बालत्तणं, कलाओ य, जोव्वणं, पाणिग्गहणं, दाओ, पासाया, भोगा य जहा सुबाहुस्स। णवरं भद्दणंदी कुमारे, सिरिदेवीपामुक्खाणं, पंचसयाणं, रायवरकन्नगाणं, पाणिग्गहणं सामिस्स समोसरणं, सावगधम्मं, पुव्वभवपुच्छा, महाविदेहवासे पुंडरीगिणी णयरी, विजयकुमारे जुगबाहू तित्थयरे, पडिलाभिए, माणुस्साउए निबद्धे, इह उप्पण्णे। से सं जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे, सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

॥ बिइयं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - इस द्वितीय अध्ययन का ... भंते ! समणेणं भगवया

त्तेण सुहविवागाणं, पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बीय स्सणं भंते! अज्झयणस्स सुहविवागाणं समणेणं भगवया महा वीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? तएणं से सुहम्मे अण गारे जम्बु अणगार एवं वयासी] परम आर्य श्री जम्बू स्वामी ने जिन सदृश श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि हे भदन्त ! यदि मुक्ति प्राप्त श्रमण भगवान् श्री महावीर देव ने इस द्वितीय श्रुत स्कंध के प्रथम अध्ययन का जो यह भाव कहा है तो उन सिद्धिगति में विराजमान् श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने द्वितीय अध्ययन में क्या भाव प्रतिपादित किये हैं? श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि- हे आयुष्मान् जम्बू ! उस ही काल एवं उस ही समय में ऋषभपुर नाम का नगर था। उसी नगर में स्तूप करंडक उद्यान था, जिसमें धन्य नाम के यक्ष का यक्षायतन था। धनावह राजा वहां का अधिनायक था। उनकी महारानी का शुभ नाम सरस्वतीदेवी था। महारानी का स्वप्न देखना, स्वप्न का राजा से निवेदन पुत्र का जन्म, जन्मोत्सव, उसका शैशवकाल, बहत्तर कलाओं का शिक्षण, यौवनावस्था में प्रवेश, राज कन्याओं के साथ पाणिग्रहण, दहेज का श्वसुर द्वारा प्रदान, राज प्रासादों का निर्माण एवं विविध भोगों का अनुभवन, ये सब बातें महाराज कुमार श्री सुबाहु के तुल्य ही समझनी चाहिये। सिर्फ इतनी ही विशेषता है कि इन राजा धनावह के पुत्र का नाम भद्रनन्दी कुमार था। इनका धनपति राजा ने पांचसौ राजकन्याओं के साथ विवाह करवाया था। इन में ज्येष्ठा श्रीदेवी थी। भगवान् वर्धमान स्वामी का यहां जब समवसरण हुआ तब भद्रनन्दी राजकुमार ने उनसे धर्म श्रवण कर श्रावक के बारह व्रतों का धारण किया। महाश्रमण श्री- का भगवान् से राजकुमार भद्रनन्दी के पूर्वभव

पृच्छा, तीर्थंकर फरमाते हैं कि महाविदेह क्षेत्र में पुंडरीकिनी नगरी है, वहां यह विजयकुमार था। इसने एक समय युगबाहु तीर्थंकर को निर्दोष आहार प्रदान किया। उसके प्रभाव के फलस्वरूप इसने मनुष्यायु का अनुबंध हुआ। पश्चात् जब यह वहां से काल कर महाराजा धनावह की महारानी सरस्वती देवी की कुक्षि में पुत्र रूप से अवतरित हुआ। गर्भ काल की पूरि समाप्ति पर इसका जन्म हुआ। राजकुमार भद्रनंदी इसका नाम रक्खा गया। अवशिष्ट वर्णन राजकुमार सुबाहु की भांति जानना चाहिये। यह महाविदेह क्षेत्र में जन्म धारण कर परम सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त करेगा।

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

॥ सुजात नामक तीसरा अध्ययन ॥

तच्चस्स उक्खेवओ। वीरपुरं णयरं, मणोरमं उज्जाणं, वीरसेणो राया, वीरकण्हा मित्ते राया, सिरिदेवी, सुजाए कुमारे, बलसिरीपामोक्खाणं, पंचसय कन्नगाणं, पाणिग्गहणं, सामी समोसरिए, पुव्वभवपुच्छा, उसुयारं णयरं, उसभदत्ते गाहावइ, पुप्फदत्ते अणगारे पडिलाभिए, माणुस्साउए निबद्धे, इह उप्पण्णे जाव महाविदेह सिज्झिहिइ ४॥ तइयं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ -जिस प्रकार द्वितीयाध्ययन के प्रारम्भ करने का उद्देश्य प्रकट किया गया है, उसी प्रकार इस तृतीय अध्ययन के प्रारम्भ करने का भी उद्देश्य समझ लेना चाहिये। श्री जम्बू स्वामी से चतुर्दशपूर्वधारी श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते

हैं कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में वीरपुर नाम का एक नगर था। जिसमें मनोरम नामक एक सुन्दर एवं सुखद उद्यान था। उसी में वीरसेन यक्ष का यक्षायतन था। वीरकृष्णमित्र यहाँ के शासक थे। जिनकी महारानी का नाम श्रीदेवी था। इनके एक अङ्गज थे जिनका नाम सुजात था। राजकुमार सुजात का पाणिग्रहण बलश्री आदि पाँचसौं राज कन्याओं के साथ हुआ था। भगवान श्री महावीर स्वामी जन पद (देश) में ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहा पर पधारे। समस्त नगर जन (राजा तथा प्रजा) प्रभू वदना के लिये आये। राजकुमार भी आया। धर्म श्रवण कर सब लोग वापिस गये। गणधर श्री गौतमस्वामी ने प्रभू से सविनय राजकुमार का पूर्व भव पूछा। भगवान् ने उसका पूर्व भव इस प्रकार बतलाया। इषुकार नाम का नगर था। जिसमें ऋषभदत्त नामक गाथापति रहता था। श्री पुष्पदत्त अनगार को इसने आहार दान दिया था। जिसके प्रभाव से इसे मनुष्यायु का बंध हुआ। यहाँ अपना आयुष्य पूर्णकर के इस भव में यह सुजातकुमार हुआ है। यह भविष्य में महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति लाभ प्राप्त करेगा॥

॥ तीसरा अध्ययन सपूर्ण ॥

सुवासव नामक चौथा अध्ययन

चउत्थस्स उक्खेवओ। विजयपुर णयरं, णंदणवणं उज्जाणं, असोगो जक्खो, वासवदत्ते राया, कण्हादेवी, सुवासवे कुमारे, भद्दापामोक्खाणं, पंचसयकन्नगाणं पाणिग्गहणं, जाव पुव्वभवो कोसंबी णयरी, धणपाले राया, वेसमण-

मद अणगारे पडिलाभिए, इह उप्पएणे जाव सिद्धे ।

॥ चउत्थ अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ -चतुर्थ अध्ययन का प्रारम्भ वाक्य कहना चाहिये। उस काल और उस समय में प्रसिद्ध तथा मुख्य विजय-पुर नाम का नगर था। जिसमें एक प्राचीन सुन्दर उद्यान था, जिसका नाम नन्दवन था। जिसमें अशोक यक्ष का यक्षायतन था। यहां के राजा वासवदत्त थे। जिनकी महारानी का शुभ नाम कृष्णादेवी था। उनका सुपुत्र सुवासव के नाम से विख्यात था, जिसका पांच सौ राजकन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। एकदा श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी विहार करते हुए यहां पधारे। राजा और राजकुमार सहित परिषद् दर्शनार्थ पहुँची। प्रभु ने सर्वाधिकार धर्मोपदेश किया। श्री गौतमस्वामी ने प्रभु से राजपुत्र का पूर्व भव पूछा। प्रभु फरमाने लगे-"हे गौतम ! सुनो, कौशाम्बी नामक सुन्दर नगर था, जहां धनपाल राजा राज्य करता था। उसने किसी एक समय श्री वैश्रमणभद्र महामुनि को आहार दान दिया। उसे मनुष्यायु का बन्ध हुआ। मर कर वह इस नगर के राजा के यहां सुवासव कुमार नाम का पुत्र हुआ। यह भी समस्त कर्म वर्गणाओं की परिसमाप्ति कर परमपद-मोक्ष प्राप्त करेगा।

-o -()-o-

॥ महाचन्द्र नामक पांचवां अध्ययन ॥

पंचमस्स उक्खेवओ। सोगंधिया णयरी णीलासोगे उज्जाणे, सुकालो जक्खो, अप्पडिहओ राया, सुकएणादेवी, महच्चंद कुमार तस्स अरहदत्ता भारिया, [illegible] तित्थयरा-

गमण निएडामपुव्वमनो। मज्झिमिया णयरी, मेहरहे राया, सुहम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ पंचम अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ—इसे पांचवें अध्ययन का उत्क्षेप करना चाहिए। उस काल उसी समय में सौगंधिका नाम की नगरी थी। नीलाशोक नाम का बहुत प्राचीन और सुन्दर उद्यान था। जिसके मध्यभाग में सुकाल यक्ष का यक्षायतन था। वहां महाराजा अप्रतिहत राज्य करते थे, जिनकी महारानी का नाम सुकृष्णा देवी था। राजपुत्र का प्रिय नाम महाचन्द्र कुमार था। उसकी भार्या का नाम अर्हद्दत्ता था। जिसके जिनदास नाम का सुपुत्र था। उस समय चरम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे। प्रभु के समवसरण में नगर जन तथा राजा सपरिवार प्रभु वन्दना के लिये गये। महाप्रभु ने विस्तारपूर्वक धर्म का उपदेश दिया। जिनदास को धर्मोपदेश श्रवण कर अत्यन्त हर्षोल्लास हुआ। श्री गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी से इनका पूर्व भव पूछा, प्रभु ने फरमाया—हे गौतम! सुनो। माध्यमिका नामकी नगरी थी, महाराजा मेघरथ वहां के राजा थे। अनगार श्रेष्ठ श्री सुधर्मा को उन्होंने आहार दान दिया था। मनुष्यायु का बन्ध किया। यहां पर जन्म लेकर यावत् सिद्ध होगा। निक्षेप-उपसंहार का विचार पूर्व की भांति कर लेना चाहिये॥

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

—०:()：०—

॥ धनपति नामक छठा अध्ययन ॥

छट्ठस्स उक्खेवओ। कणगपुर णयर, सेयासोए उज्जाणे वीरभद्दो जक्खो, पियचन्दो राया, सुभद्दा देवी, वेसमणे कुमारे जुवराया, सिरिदेवीपामोक्खाणं, पंचसयरायवरकन्न-गाणं, पाणिग्गहणं, तित्थयरागमणं, धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवे, मणिवइया णयरी, मित्ते राया संभूतविजए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे ॥

भावार्थ -उस काल उस ही समय में कनकपुर नाम का एक नगर था। यहा श्वेताशोक उद्यान था। वीरभद्र यक्ष का यक्षायतन था। यहा के नरेश प्रियचन्द्र नाम से विख्यात थे। सुभद्रादेवी उनकी महारानी थी। वैश्रमणकुमार युवराज था। जिसका पाणिग्रहण संस्कार पाचसौ उत्तम राज कन्याओं के साथ हुआ था। श्रीदेवी उन सब में प्रमुख थी। [illegible] श्रमण भगवान् महावीर प्रभु यहा उद्यान में पधार [illegible] युवराज का सुपुत्र धनपति था जिसने भगवान से श्रावक (आगार) धर्म स्वीकार किया। भगवान् से गौतम [illegible] उत्तर में श्री भगवान ने इस प्रकार [illegible] मणिवइया एक नगरी थी जहा के महाराज [illegible] थे। उन्होने सम्भूतिविजय मुनिराज को [illegible] यहा से आयु समाप्त कर यह [illegible] यह सिद्धि प्राप्त करेगा।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

॥ महाबल नामक सातवा अध्ययन ॥

सत्तमस्स उक्खेवओ। महापुर णयरं रत्तासोग उज्जाणं रत्तपालो जक्खो, बले राया, सुभद्दा देवी, महब्बले कुमारे रत्तवईपामोक्खाणं पचसयरायवरकन्नगाणं पाणिग्गहणं तित्थयरागमणं, जाव पुव्वभवो, मणिपुर णयरं, णागदत्ते गाहावई, इंददत्ते अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सत्तम अज्झयणं समत्त ॥

भावार्थ – प्रस्तुत अध्ययन का उत्क्षेप प्रस्तावना पूर्ववत् जान लेना चाहिये। आर्य जम्बू! महापुर नामक नगर था। वहा रक्ताशोक नामक प्राचीन उद्यान था। उस में रक्तपाल यक्ष का विशाल स्थान था। वहा महाराजा बल का शासन था। जिनकी महारानी सुभद्रा देवी थी। महाराजकुमार महाबल था। उसका रक्तवती आदि ५०० पाचसो राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था। उस ही समय में तिर्थकरनाथ श्री महावीर भगवान् का पुनीत पदार्पण हुआ। परिषदा वन्दन करने आई। राजा भी आये, राजकुमार भी आये। राजकुमार ने प्रभू से श्रावकधर्म अगीकृत किया। प्रभु के ज्येष्ठ श्रेष्ठ शिष्य गणधर गौतम ने प्रभू से पृच्छा की। श्री भगवान् ने पूर्व भव बताया। पूर्व भव में पृथ्वीतल मडित सुरम्य 'मणिपुर' नगर था। वहा नागदत्त गाथापति भी रहता था। उसने इन्द्रदत्त अनगार को शुद्ध एव ऐषणीय आहार से प्रतिलाभित किया। आयुष्य की समाप्ति कर यहा महाबल के रूप में उत्पन्न हुआ है। अनागत में जिनेश्वर कथित मार्ग में दीक्षित होकर मुक्ति लाभ प्राप्त करेगा।

॥ सातवा अध्ययन समाप्त ॥

महाचन्द्र नामक नौवाँ अध्ययन

नवमस्स उक्खेवओ। चंपा णयरी पुण्णभद्दे उज्जाणे, पुण्णभद्दो जक्खो, दत्ते राया, रत्तवई देवी, महचंद कुमारे जुवराया, सिरिकंतापामोक्खाणं पंचसयरायवरकन्नगाणं पाणिग्गहणं, जाव पुव्वभवो, तिगिच्छिया णयरी, जियसत्तू राया, धम्मविरिए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ नवमं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ—नवम अध्ययन का प्रारम्भ वाक्य कहना चाहिये चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र उद्यान में पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। महाराजा दत्त के शासन में प्रजा अमन चैन में थी उनकी महारानी रक्तवती थी, युवराज महाचन्द्रकुमार था श्रीकान्ता प्रमुख पांच सौ राजपुत्रियों के साथ पाणिग्रहण कराया गया था। तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर स्वामी का पदार्पण और गणधर देव श्री गौतम स्वामी द्वारा प्रभु से पूर्व भव पृच्छा। युवराज का पूर्वभव वर्णन। चिकित्सिका नाम की नगरी थी जितशत्रु वहां का महाराजा था, उसने किसी एक समय में श्री धर्मवीर्य अनगार को प्रतिलाभित किया और मनुष्य आयु का बन्ध करके वहां से काल कर इस नगर में महाचन्द्र युवराज हुआ है। यह भी मुक्ति लाभ करेगा।

॥ नौवां अध्ययन सम्पूर्ण ॥

श्री वरदत्त का दसवां अध्ययन

जइणं भंते! दसमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं साएए णामं णयरे होत्था,

रानी आईं और राजकुमार आए। धर्म श्रवण कर वरदत्तकुमार श्रावक बनगए। गणधर गौतम स्वामी ने प्रभु से महाराज कुमार का पूर्व भव पूछा, भगवान् ने फरमाया, 'हे गौतम ! शतद्वार नाम का नगर था, जहा विमल वाहन नाम का राजा राज्य करता था। उसने धर्मरुचि अणगार को आहारादि से प्रतिलाभित किया, वह वहा की भवस्थिति पूर्ण कर यहाँ मित्रनन्दी राजा के यहा वरदत्त के रूप में उत्पन्न हुआ है।

अवशेष वर्णन सुबाहुकुमार के प्रथमाध्ययन के समान समझलेना चाहिये। यावत् दीक्षा लेकर निरतिचार श्रुत चारित्र रूप धर्म का पालन करते हुए आयुष्यकर्म की परिसमाप्ति पर प्रथम स्वर्ग (सौधर्म) म उत्पन्न होगा। सुधर्म स्वर्ग से लेकर सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशुक्र आनत एव आरण इन स्वर्गों में जन्म धारण करेगा। एक एक स्वर्ग से च्यवकर बीच बीच में मानव भव धारण करना एव दीक्षित होना इत्यादि सुबाहुकुमार के सदृश समझ लेना चाहिये, अन्ततोगत्वा सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होगा।

वहा से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र म जो आढ्य-सम्पन्न, कुल होंगे उनमें से किसी एक कुल म मानव जन्म धारणकर यथा समय दीक्षा लेकर तप ज्ञानादि की सम्यक् आराधना से दृढप्रतिज्ञ के समान काल के अवसर म काल कर सिद्धगति को प्राप्त करेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी उपसहार करते हुए अपने प्रिय शिष्य श्री जम्बू को इस प्रकार फरमाने लगे-'हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन यावत् दस अध्यायों का यह भाव प्रकट किया है- ऐसा मैं कहता हूँ॥ श्री सुधर्मा स्वामी के परमोपकारी वचनों

को श्रवण कर श्री जंबू स्वामी ने विनयावनत होकर उनके वचनों पर श्रद्धा प्रदर्शित की और निवेदन रूप में कहा—"हे भदन्त ! आपने जो सुखविपाक का अर्थ सुनाया है, वह सत्य है; यथायत सत्य है, परम श्रद्धेय है।" यह सुखविपाक श्रुतस्कन्ध का वर्णन है।

। दसवां अध्ययन समाप्त ।

॥ सुखविपाक सम्पूर्ण हुआ ॥

णमो सुयदेवयाए । विवागसुयस्स दो सुयक्खधा—दुहविवागो य सुहविवागो य । तत्थ दुहविवागे दस अज्झयणा, एक्कमग्गा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति । एवं सुहविवागेवि । सेसं जहा आयारस्स । एक्कारसमं अगं समत्त ।

परम विशुद्ध श्रुत देवता को नमस्कार हो। प्रस्तुत विपाक श्रुतांग के दो श्रुतस्कन्ध हैं-प्रथम दुःख विपाक श्रुतस्कन्ध और द्वितीय सुखविपाक श्रुतस्कन्ध । प्रथम और द्वितीय दोनो श्रुतस्कन्ध क्रमशः दश दश अध्ययनोंमें विभक्त हैं। भाषापेक्षा से ये सब वर्णन प्रायः समान ही है । प्रथम दुःखविपाक श्रुतस्कन्ध में पाप कर्मों के विपाक का वर्णन है, और द्वितीय सुखविपाक श्रुतस्कन्ध में पुण्य कर्म के विपाक का वर्णन है। इन दोनों श्रुतस्कन्धों का पारायण (वाचन) क्रमशः दस दस दिवसों में ही किया जाता है। अवशिष्ट वर्णन के लिए सूत्रकार ने श्रीआचाराङ्ग सूत्र की तरह समझने का निर्देश किया है ॥

॥ इति श्री सुखविपाक सूत्र का हिन्दी भाषानुवाद

आचार बावनी

वधमान शासन धणी, गणधर लागु पाँय।
दया माता ने विनवु, वन्दु सीस नमाय ॥१॥
ठाणायग मे चालिया, श्रावक चार प्रकार।
मात पिता सरीखा कह्या, साधा के हितकार ॥२॥
करडी काठी सीख दे, राखे दृढ़ व्रत धार।
ढीला पड़वा दे नहीं, ते सुणजो अधिकार ॥ ३॥

ढाल

॥ जी स्वामी अरज सुणो श्रावक तणी-अ तरा ॥
जी स्वामी घर छोडीने निकस्या, थें तो लीधो सजमभार जी स्वा०
पच महाव्रत पालजो, मनी लोपजो जिनजी री कार जी ॥ १ ॥
जी० तप जप सजम आदरो, निद्रा विकथा निवार जी स्वा ।
बावीस परिसा जीतजो सजम खाडारीधारजी ॥ २ ॥
गृहस्थी सु मोह मती राखजो, थे तो लीजो शुद्ध आहारजी
असूझतो आहार देखने, पाछा फरजाजो तिणवार ॥ ३ ॥
कोई वेराने थाने लाडवा, कोई चुरा ने खीरजी स्वा ।
कोई देवे सूखा टुकड़ा, मती होजो थें दिलगीरजी ॥४॥
कोई करे थाने वन्दना, कोई नमावे सीस जी ।
कोई देवे थाने गालिया, मती आणजो राग ने रीस जी ॥ ५ ॥
छल छिद्र जोरो मती, कूड कपट न आणो लेस जी ।
क्रोध कषाय करजो मती, थाने खम्या करणी विशेषजी ॥६॥

जन्तर मन्तर करजो मती, मती कहेजो सुपन निचार जी।
ज्योतिष निमित्त भाँखो मती, योतो साधु तणो आचार जी ॥७॥
रग्या चग्या रहेणो नहीं, नहीं करणो देह श्रगार जी।
वेश श्रगार वणावता, मुखधोवता दोष अपार जी स्वा० ॥८॥
कपड़ा पहेरो उजला, भागी मोला चित्त धार जी।
साधु दीसे सणगारिया, लोगा में निन्दा थायनी ॥९॥
मणिया वणाया विन्द जुँ, गोग पुटराने टुँदार जी।
मेल उतारे शरीरनो, साधुजी ने लागे जवाब जी ॥१०॥
चौमासो करजो देखने, थानक निर्दोष निचार नी।
नरनारी रेवे जठे, नहीं साधु तणो आचार जी ॥११॥
सथारो करनो सोचने, तपस्या करजो निचार जी।
पाछे मन डिग जावसी, तो हँसेगा नरनार जी ॥१२॥
दोय साधु तीन आरजा, विचरनी सुखकार जी।
एक साधु दोय आरजा, मती करनो थे विहार जी ॥१३॥
मेघ मुनिवर मोटका, श्री धर्मरुचि अनगार जी।
सकट में सहेंठा रह्या, जारा आगम में अधिकार जी ॥१४॥
जो थांरे आद चानसो, तो लोपसो जिननी री कारजी।
दुष्टभाव लाया थका, नहीं सरे गरज लगारजी ॥१५॥
वहेरण ने गया प्रेम शो, थे नर नार्या ना रूप जी।
साधुपणा थी चूकने, थे पडसो भव ना कूप ॥१६॥
कट फला घणी काढ़ ने, थे रिझावशो नरनारजी।
वैराग्य भाव आया विना, नहीं सरे गरज लगार जी ॥१७॥
पलेवण किया विना, परभाते करणो विहार जी।
उनो आहार दोनु टका नहीं साधु तणो आचार जी॥
गृहस्थ रे घरे नहीं बेसणो, कारण विनाकोइ साध जी।
सावद्यभाषानहीं बोलणी, सजम में लागे बाधजी।

मुडा सु वस्तु निषेध ने, मत करजो अंगीकार जी।
वमियारी वाछा करे, बाग कुत्तारो यो आचार ॥२०॥
आप तणी प्रशसा करे, देला पर राखे द्वेष जी।
जा में साधपणो तो छे नहीं, थे आगम लेजो देखजी ॥२१॥
ओछी भाषा नहीं बोलणी, नहीं करणो तुच्छकारजी।
कठोर वचन बोलने, थे सजम जावोला हार जी ॥२२॥
उठगण कारण विना, देवे पूठ पाटिया पूरजी
पूज्य कहीने पुजावसी, रहेसी मुक्ति मारग सु दूरजी ॥२३॥
तिथि पर्वी तप नहीं करे, नहीं लोक तणी मुरजाद जी।
दोनुटका उठे गोचरी, पडिया जीभ तणा सवाद ॥२४॥
ताक ताक जावे गोचरी लावे ताजा माल जी।
अरस परे अरति धरे, जारो वणरयो कुन्दो लालजी ॥२५॥
एक घरे दोनु टंका, नित लावे लगातण आहार जी।
नितपिण्ड आहार लेवता, थावे लागे तीजो अनाचार ॥२६॥
ऊंचे डोरे मुहपती, पलेवण भी नहीं ठीक जी।
साझ सवेरे सुई रहे, ये विण विध माने सीख ॥२७॥
गच्छगामी सं परचो घणो, आवण ने जावण होय।
लेणो देणो सट्टो पट्टो, साधु ने करणो नहीं कोय ॥२८॥
मुडा सुं बोली ने फरे, दूजो महाव्रत देवे खोय जी।
साचा ने भूडो करे, साग साधुरो होयजी ॥२९॥
दोष लागे छे सामटो, थानक पण साखी होयजी।
प्रायश्चित्त लेवे नहीं, जारे पर भव डर नहीं होयजी ॥३०॥
माई पीनी ने सुई रहे, बेटा पडिक्कमणो ठायजी।
वस्त्र पात्र राखे घणा, ते तो पासत्था कहेवाय जी ॥३१॥
नारी आवे एकली, अक्षर पद सीखण काजजी।
पहेली आवे रात की, मती सीखावजो मुनिराजजी ॥३२॥

सासय माल नी चोपिया, मेरो मरण ने लोक जी।
पर्षी जमावे आपणी, वैराग्य विना सब फोक जी ॥३३॥
श्रावक मात पिता जिसा, थी सीख देवे भली रीत जी।
जाने कांटा खीला सरीखा गिने, करे फर फर ने फजीतनी ३४
थयद चूक थारे भूला, नहीं जाने नय का नामजी।
गाम ढंढेरो फेरादियो, श्रावक म्हारो नामजी ॥३५॥
पहला श्रावक मती जाण जो, श्रावक होवे मत धार जी।
कष्ट पन्था कायम रहे, जो पडिमा पालण हार जी ॥३६॥
ऊचा चढीने मालिये, मती जोयजो नरनारजी।
मन वश जो नहीं राखस्यो, तो जासो जमारो हार जी ॥३७॥
विशम राखो वैराग्यना, तो पण आपरो छंद जी।
परपंच सघला छोड़ने राखो संजम सुं संबंध जी ॥३८॥
दुखमी आरो पाँचमो, निन्दाकारी लोग जी।
औगुणवाद बोले घणा, थे तो शुद्ध पालजो जोग ॥३९॥
आचारांग में चालिया, साधु तणो आचार जी।
तिण अनुसारे पालस्यो, तो होशी खेवो पार जी ।४०
इया, भाषा, एषणा, ओलखणो आचार।
गुणवन्त साधु साधवी, जाने चतु धारवार जी॥४१॥
आप थापी पर निन्दवा, जामे हो तेरा दोष जी।
दूजे संवर देखलो, थे तिण विध जासो मोक्ष ॥४२॥
साधुनी में गुण अतिघणा, मासु कह्या नहीं जाय।
सैंठाणे मन भावनी, ढीला तो निन्दक थाय ॥४३॥
जिणरी थापना नरेन्द्रना, मत करजो ताणाताण जी
साध आचार न पालजो, तो थारो निरजाण जी

दोहा

मुनिवर उठिया गोचरी, इर्या सुमति विचार।
वेश्यानो पाड़ो वर्जी, फिरजे नगर मझार ॥१॥

ढाल

जी किण कारणने वरजियो, थें साभलजो अधिकार जी।
शका उपने चित्त में, चारित्र नी होवे छार जी ॥४५॥
मानोपत वस्त्र धारजो, रग विरगा सु मन फेर जी ।
शका होवे तो देख लो, आचाराग में नहीं देर जी ॥४६॥
आर्या, बाणी, ने कूवडी, वली स्त्री तिरिया जाण जी ।
तिण कने उभा रीजो मती, थाने छे जिनवर नी आण जी ॥४७॥
नगर में जानो गोचरी, एक रीतसु लीजो आहार जी ।
आछा आछा घर ताकिया, थाने लागे दोष अपार जी ॥४८॥
उतावला चालो मती, मती करता जाजो वात जी ।
हसता पण हालो मती, सजम ने राखो साथ जी ॥४६ ॥
'आचारागनी' सुणीकरी, थें हिरदे लीजो धार ।
म्हें सूत्र सिद्धात वाचा नहीं, सुण कर कीनो उपाय जी ॥५०॥
ओछो अधिको जो हुवे, तो लीजो आप सुधार जी।
जिनजी रा वचन आराधशो, तो करशो खेवो पार ॥५१॥
सवत अठारा छत्तीस में, जोडी दक्षिण देश मुझार जी ।
जोड़ी मोतीचद जुगत सु, साभलजो नरनार जी स्वामी ।
अर्ज सुनो श्रावक तणी ॥५२॥

श्रेष्ठ श्रावक श्री कामदेवजी की सज्झाय

श्रावक श्री वीर ना चम्पा ना वासीजी- श्रंतरा।
एक दिन इन्द्र प्रशसियोजी, भरी रे सभा के माय।
दृढ़ताई कामदेव नी कोई असुर मने न चलाय ॥श्रा १॥
सरध्यो नहीं एक देवताजी, रूप पिशाच बनाय।
कामदेव श्रावक कने आयो, पौषधशाला के माय ॥२॥
ह मो! रे कामदवजी! थाने कल्पे नहीं रे कोय।
थारे धरम नहीं छोड़सो पण, हु छोड़ावसु तोय ॥३॥
रूप पिशाच नो देखने जी, डरिया नहीं मन माय।
जाणयो मिथ्यात्वी देवता दियो ध्यान में चित्त लगाय ॥४॥
एकवार मुखसु कहो, इम देव कहे वारवार।
कामदेव बोल्या नहीं, जद देव आयो छे बहार ॥५॥
हाथी रूप वैक्रय कियोजी, पिशाच पणो कियो दूर।
पौषधशाला में आयने, यो बोले वचन करूर ॥६॥
मन करी चलिया नहीं, तब हाथी सुड में भाल।
पौषधशाला के बाहिरे, दियो आकाश माहि उछाल ॥७॥
दतशूल पर भलने जी, कमल नी पेरे रोल।
उज्जल वेदना उपनी पण, रह्या ध्यान अडोल ॥८॥
गज रूप तजी सप हुवोजी, कालो महा विकराल।
डक दियो कामदेव ने, यो क्रोधी महा चंडाल ॥९॥
उज्जल वेदना उपनीजी, डरिया नहीं तिल मात्र।
सुर थाकी प्रकट हुवोजी देवता रूप साक्षात ॥१०॥
करजोडी यू विनवे, थारा सुरपति कियारे बखाण।
मैं मूढ मति सरध्यो नहीं, थाने उपसर्ग दियो आण ॥११॥

मन करी डगिया नहीं जी, थें धर्म पाया परिमाण ।
खमो अपराध माहरो करी, दव गयो निज स्थान ॥१२॥
वीर जिनन्द समोसयाजी, कामदेव वन्दन जाय ।
वीर कहे उपसग दियोजी, दव मिथ्यात्वी आय ॥१३॥
हां स्वामीजी साच है, अब श्रमण श्रमणी बुलाय ।
घर बेठा उपसर्ग सह्यो, इम प्रशंसे जिनराय ॥१४॥
बीस बरस शुद्ध पालियाजी, श्रावक ना व्रत बार
देवलोक मा उपन्या, चवी जासे मोक्ष मभार ॥१५॥
मरूधर देश सुहामणोजी, जयपुर कियो चोमास ।
अष्टादस शत छ्यासीए, खुशालचन्दजी जोडी प्रकाश॥१६॥

समाप्त
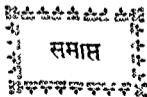
संघ के अगले प्रकाशन

★

नन्दी सूत्र

[१] नन्दी सूत्र, मूल पाठ और हिंदी भावार्थ सहित इत्यादि से सम्पूर्ण।

[२] भगवान जिनेश्वर प्रणीत—

मोक्ष–मार्ग

श्रुत एवं चारित्र धर्म विषयक परममान्य आगमों का सार युक्त प्रकाशित होने वाला अद्वितीय ग्रन्थरत्न।

सम्पादन होरहा है—

[३] औपपातिक सूत्र
[४] भगवती सूत्र

संघ की ओर से श्री जिनवाणी का प्रकाशन क्रमशः होकर समाज की सेवा में उपस्थित होता रहेगा।